मध्य भारती

मानविकी एवं समाजविज्ञान की द्विभाषी शोध-पत्रिका

मध्य भारती 75 जुलाई-दिसम्बर, 2018

Platinum Edition

75

मध्य भारती

ISSN 0974-0066

डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
सागर (मध्यप्रदेश) - 470 003
दूरभाष : 91-7582-264455
ई-मेल : madhyabharti.2016@gmail.com

पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक स्थल नान्दूर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नागेश दुबे

नान्दूर प्राक्मौर्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति से जुड़ा हुआ मध्यप्रदेश का एक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक स्थल है। वर्तमान में नंदोर (नान्दूर) एक गाँव के रूप में पूर्वी मालवा का अंग है। प्राचीन काल में यह नगर एक सामरिक और सांस्कृतिक महत्त्व का नगर था। यह प्राचीन महत्त्व का गांव भोपाल के दक्षिण पूर्व में 37 किलोमीटर की दूरी पर बेतवा (वेत्रवती) के पूर्वी तट पर बसा हुआ है। यहाँ से बेतवा नदी दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती हुई अन्ततः पूर्व दिशा की ओर मुड़कर यमुना नदी से मिल जाती है। भोपाल-होशंगाबाद-इटारसी रेलवे मार्ग और राजमार्ग पर भोपाल से 22 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है मण्डीद्वीप कस्बा तथा रेलवे स्टेशन। मण्डीद्वीप के दक्षिण-पश्चिम में 15 किलोमीटर के सड़कमार्ग को तय करने के पश्चात् रायसेन जिलान्तर्गत नंदोर गांव पड़ता है। प्राचीनकाल में इस नगर का सड़क मार्ग से जुड़ाव उत्तर में साँची, विदिशा, गुना, तुमैन, पवाँया, ग्वालियर, मथुरा से था तथा पूर्व में इसका जुड़ाव एरण, त्रिपुरी, कोशाम्बी और पाटलिपुत्र से था। पश्चिम से यह नगर उज्जैन से जुड़ा हुआ था और दक्षिण में माहिष्मती एवं भृगुकच्छ से। इस तरह इस प्राचीन नगर का संबंध उस काल के सभी ऐतिहासिक, सामरिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक नगरों से था।

नामकरण, पहिचान तथा महत्त्व :

नान्दूर का प्राचीन नाम नंदिपुर व नंदिनगर था।[1] इस प्राचीन ऐतिहासिक नगर को शैशुनाग वंश के ख्यातिलब्ध शासक नंदिवर्धन ने बसाया था।[2] इसके पूर्व इस वंश का महान् शासक शैशुनाग (412-394 ई.पू.) ने अवन्ति महाजनपद को जीतकर मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।[3]

उस समय पूर्वी मालवा का क्षेत्र, जिसमें नांदूर क्षेत्र भी सम्मिलित था, अवन्ति महाजनपद का ही हिस्सा था। 'महावंश टीका' के अनुसार उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र कालाशोक (काकवर्ण) (394-366 ई. पू.) ने मगध साम्राज्य पर शासन किया।[4] 'महाबोधि-वंश' के अनुसार कोलाशोक के दस पुत्र हुए जिन्होंने सम्मिलित रूप से बाईस वर्षों (366-344 ई.पू.) तक मगध साम्राज्य पर शासन किया।[5] इन पुत्रों में सर्वाधिक बलशाली शासक नंदिवर्धन ही था। पुराणों के अनुसार यह इस वंश का अन्तिम शासक था।[6] 344 ई. पूर्व में मगध साम्राज्य पर महापदम् नंद का आधिपत्य हो गया। यह नंद वंश का संस्थापक था।7 इससे यह सिद्ध हो जाता है कि नान्दूर को नंदिपुर व नंदिनगर नाम बौद्धकाल में मिला था। बौद्धकाल के पूर्व यह स्थान अवन्ति-दशार्ण का हिस्सा रहा होगा। इन जनपदों या राज्यों से संबंधित इतिहास तथा पुरातत्व सामग्री आज प्रचुर मात्र में उपलब्ध हैं। इस प्राप्त सामग्री में नंदिपुर व नंदिनगर का सन्दर्भ या उल्लेख साँची के शिलालेखों को छोड़कर कहीं नहीं मिलता। साँची स्तूप के 53 शिलालेखों में 53 बार नंदिनगर के भिक्षु व भिक्षुणियों द्वारा दान दने का उल्लेख मिलता है।[8] बाद के कालों में इसका नाम नान्दनेर पड़ा। वर्तमान समय में इसे नन्दौर,

मध्य भारती-75, जुलाई-दिसम्बर, 2018, ISSN 0974-0066, *pp. 131-140*

नान्दूर, नान्दौर आदि अनेक नामों से जाना जाता है। आज यह एक गांव के रूप में विद्यमान है। यहां के उत्खनन से स्पष्ट है कि प्राचीन समय में यह नगर डेढ़ किलोमीटर के परकोटे से घिरा हुआ था। यहां से एक प्रासादीय भवन और उसके चारों ओर पानी की खाई के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि यह नगर प्राचीन काल में अपनी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामरिक गौरव और ख्याति के लिए प्रसिद्ध था।[9]

नांदूर-उत्खनन का ऐतिहासिक विवरण :

मध्यप्रदेश के पुरातात्विक सम्पदा में समृद्ध प्राचीन ऐतिहासिक नगरों में नान्दूर का स्थान महत्वपूर्ण है। बेतवा नदी के पूर्वी तट पर बसे इस प्राचीन नगर की सभ्यता और संस्कृति को खोजने तथा उजागर करने का श्रेय डॉ. शंकर तिवारी को है। पारियात्र (पं. विन्ध्य तथा अरावली) पर्वत श्रृंखला के शैलचित्रों का सर्वेक्षण करते हुए उन्हें सन् 1980 ई. में उस क्षेत्र की प्राचीनता का सर्वप्रथम बोध हुआ।[10] उन्हें इस स्थल से कई 'नंदि' लेखयुक्त प्राचीन ताँबे के सिक्के मिले थे[11] जिसके आधार पर उन्होंने मध्यप्रदेश शासन के पुरातत्व विभाग तथा सागर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र. के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग का ध्यान इस प्राचीन नगर की ओर आकृष्ट कराया। परिणामस्वरूप अप्रैल, 1981 ई. में सागर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के अधिकारियों ने संयुक्त रूप में उत्खनन कार्य प्रारंभ किया।[12] सर्वप्रथम दो खदाने (सं.1 व 2) खोदी गईं, जिसमें प्राचीन प्राचीर (परकोटा भीत) तथा आराधना गृह के कुछ अवशेष मिले, जो प्राक्मौर्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति के परिचायक है।[13] इन्हीं खदानों से गुप्तकालीन, धातु और मिट्टी की पकी सीलें भी मिली।[14] किन्तु किंचित कारणों से यह उत्खनन कार्य जारी न रह सका। कुछ माह बाद ही म.प्र. पुरातत्व विभाग के अधिकारी श्री खरे, डॉ. शंकर तिवारी, टैगोर प्रो. स्व. कृष्णदत्त वाजपेयी (पूर्व अध्यक्ष, प्रा. भा.इति., संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग सागर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र.) तथा डॉ. वी.श्री. वाकणकर (पूर्व अध्यक्ष - प्रोफेसर, प्रा.भा.इति., संस्कृति एवं पुरातत्व, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन म.प्र.) आदि की संयुक्त समिति द्वारा इस स्थल के निरीक्षण के पश्चात् उत्खनन को और आगे बढ़ाने का निर्णय लिया गया। तत्पश्चात् उत्खनन का दूसरा दौर मार्च, 1982 ई. में डॉ. श्यामकुमार पाण्डेय तथा उनकी टीम ने प्रारंभ किया। इस उत्खनन में दो नई खदाने (सं. 3,4) खोदी गई, जिसमें एक बड़े भवन के अवशेषों से पांच लोहे की बड़ी ईंटे, लोहे के तीर, भाले व अन्य सामग्री के अवशेष प्राप्त हुए।[15] उत्खनन का तीसरा दौर इसी टीम द्वारा, फरवरी, 1983 में प्रारंभ किया गया, जिसमें एक और नई खदान (सं.5) खोदी गई और पुरानी खदान सं. 2 का विस्तार किया गया है।[16]

इस प्रकार नान्दूर-उत्खनन सन् 1981 ई. से 1983 ई. तक क्रियान्वित रहा। यहाँ के उत्खनन में मिट्टी का बना परकोटा; मोटे पत्थर व पक्की बड़ी आकार की ईंटों की दीवारें; पत्थर-मिट्टी, बजरी और पक्की ईंटों का फर्श; काले-लाल-चितकबरे रंग के मृद्भाण्ड, हस्तनिर्मित और साँचे से निर्मित मृण्मूर्ति; कीमती पत्थर व काँच की मणि, काँच की चूड़ियाँ; पत्थर तथा बट्टे आदि पुर वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, जिससे इस नगर की सभ्यता-संस्कृति प्राक्मौर्ययुगीन सिद्ध होती है।[17] यहाँ से एक गुप्तकालीन धड़युक्त पत्थर की मूर्ति, एक गोल पत्थर पर नक्शा व शंख लिपि और पिचाशी लिपि में अंकित शिलालेख तथा कुछ धातु मुद्राएँ भी मिली हैं, जिन पर 'सिमिलिपुतलस, देवदास, अमलयश रज्ञो' खुदा हुआ है।[18] यहाँ से कुछ मिट्टी की सीलें भी मिली हैं, जिन पर 'धन्सस्य महादण्डनायक पर्णक, मातृविष्णु व श्री विक्रमादित्य' खुदा हुआ है।[19] यहाँ से प्राचीन तांबे के ढले-सिक्के, पंचमार्क सिक्के कोशाम्बी व एरण प्रकार के ताँबे के सिक्के, चाँदी के महाक्षत्रप ईश्वर वर्मा, श्रीधर वर्मा, स्वामी विजयसेन, परीक्षित, रूद्रसेन, महाराज पिशाच के सिक्के, नागराजाओं के ताँबे के सिक्के और एक मुगलकालीन चाँदी के सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं।[20] यह सिक्के नान्दूर ग्राम को प्राक्मौर्ययुगीन से लेकर मुगलयुगीन ग्राम घोषित करते हैं।

नान्दूर-उत्खनन से सर्वप्रथम ताँबे निर्मित आहत सिक्के भी मिले हैं, जिन पर इन्द्रध्वज, मेरु, स्वस्तिक, नंदीपद, वेदिका-वृक्ष, वज्र, नदी में मछली, सूर्य आदि के चिह्न अंकित हैं।[21] इन आहत सिक्कों में से कुछ का पृष्ठभाग सादा है और कुछ का पृष्ठभाग चिह्नांकित। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में व्यापारिक संघ व श्रेणी की ओर से 'नैगम' से सिक्के चलाये गये थे।[22] इस प्रकार के सिक्के यहाँ के उत्खनन से प्राप्त हुए हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि शुंगकाल में नान्दूर एक महत्वपूर्ण निगम के रूप में स्थापित हो गया था।[23] ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ई.पू. चौथी शताब्दी के मध्य प्रमुख जनपदों-निगमों-नगरों ने अपने-अपने नामांकित सिक्के चलाये थे, ऐसा उल्लेख मिलता है।[24] यहाँ के उत्खनन से सातवाहनकालीन सिक्के भी मिले हैं जो अभिलिखित हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनका नान्दूर नगर तथा उसके आसपास के क्षेत्र पर अधिकार था।[25] सातवाहन शासकों के पूर्व इस क्षेत्र पर मौर्य और शुंगों का अधिकार था। सातवाहनों के पश्चात् नान्दूर नगर और क्षेत्र पर पश्चिम भारत के शक-क्षत्रपों-महाक्षत्रपों का आधिपत्य रहा। तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अर्थात् 275 ई. तक नागराजाओं ने इस क्षेत्र पर शासन किया। इन नागराजाओं ने भी यहाँ पर अपने-अपने सिक्के चलाये थे। नान्दूर-उत्खनन से प्राप्त नागराजाओं के ताँबे के सिक्कों से यह बात प्रमाणित हो जाती हैं।[26] नागराजाओं के बाद इस क्षेत्र पर गुप्त-सम्राटों का आधिपत्य हो गया, जो 275 ईसवीं से प्रारंभ होकर 550 ईसवी तक चला। गुप्त काल में एस नगर और क्षेत्र ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक तथा सामरिक-व्यापारिक दृष्टि से समुचित विकास किया। यहाँ के उत्खनन से उत्तर गुप्तकाल से संबंधित किसी भी सिक्के की प्राप्ति नहीं हुई है जिससे यह अनुमानित होता है कि इस काल में यह क्षेत्र निर्जन रहा होगा। इतिहासकारों की राय में हूणों ने इस नगर और क्षेत्र को लूट-पाट कर निर्जन बना दिया था। एक उल्लेखानुसार तोरमाण (हूण शासक) के नेतृत्व में हूण सत्ता पवैया (पुवाया-पद्मावती), तुमैन (तुम्बवन), एरण (ऐरिकिण) क्षेत्र पर विजय हासिल कर पूर्वी मालवा पर अपना आधिपत्य सुदृढ़ कर लिया था।[27] लगभग 800 ईसवी के पश्चात् यह नगर फिर से आवासित हुआ। नान्दूर गाँव से प्राप्त मूर्तियों के अवशेष परमारयुगीन कला तथा उनके आधिपत्य के प्रमाण हैं।

नान्दूर का राजनीतिक इतिहास :

मध्यप्रदेश में स्थित नान्दूर क्षेत्र का भूभाग ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। अध्ययन की सुविधानुसार इस क्षेत्र के राजनीतिक इतिहास को निम्नांकित कालखण्डों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. नान्दूर क्षेत्र का महाजनपद युगीन इतिहास :

ईसा पूर्व छठवीं शताब्दी के प्रारंभ में उत्तरी भारत में सार्वभौम सत्ता का अभाव था। यहां अनेक स्वतंत्र राज्य विभक्त रूप से स्थापित थे। यह राज्य यद्यपि उत्तरवैदिकयुगीन राज्यों की अपेक्षा विस्तृत और शक्तिशाली थे तथापि इनमें से कोई भी स्वतंत्र राज्य देश को राजनैतिक एकता के एक सूत्र में संगठित करने में समर्थ नहीं था। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुत्तर-निकाय' में उत्तरी भारत में स्थापित 'षोडश महाजनपद' का उल्लेख मिलता है जिसमें 'अवन्ति, प्रमुख है।[28] एक अन्य बौद्ध धर्म ग्रन्थ 'दीर्घनिकाय' में केवल सात राज्यों-कलिंग, अस्सक, अवन्ति, सौवीर, अंग, विदेह, काशी का उल्लेख प्राप्त है।[29] पुराणों में भी ऐसी ही सूचियाँ उपलब्ध होती हैं, परन्तु उसमें 'वज्जि' का उल्लेख नहीं है।

इन सूचियों से सिद्ध होता है कि महाजनपद युग के पूर्वार्द्ध में अवन्ति एक प्रमुख राज्य था जिसमें पश्चिमी और मध्य मालवा के क्षेत्र सम्मिलित थे। इसके दो भाग थे- उत्तरी अवन्ति, जिसकी राजधानी अवन्तिका (वर्तमान उज्जैन) थी और दक्षिणी अवन्ति, जिसकी राजधानी महिष्मती (वर्तमान महेश्वर) थी। इन

दोनों को बेतवा (वेत्रवती) नदी बीचोबीच विभाजित करती थी। पाली धर्म ग्रन्थों से पता चलता है कि बौद्ध काल में अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी ही थी जहाँ पर राजा प्रद्योत राज्य करता था।[30] किन्तु जैनधर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भागवतीसूत्र' और पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' ग्रन्थ में अवन्ति के स्थान पर 'मालवा' राज्य का नामोल्लेख मिलता है। सम्भवतः यह नाम यहां मालव जाति के लोगों के अधिकाधिक निवास के कारण ही पड़ा है।

महाजनपद युग के उत्तरार्द्ध में मालवा राज्य दो भागों में विभाजित हो गया- पश्चिमी मालवा, जिसकी राजधानी उज्जयिनी ही थी, परन्तु पूर्वी मालवा की राजधानी विदिशा हो गयी। नान्दूर क्षेत्र उस समय पूर्वी मालवा राज्य का ही अंग था। नान्दूर इस काल का एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर था। प्रद्योत, जो इस क्षेत्र का शासक था, बाद में अपने बौद्ध पुरोहित महाकच्चायन के प्रभाव से बौद्ध बन गया। इसका केन्द्र बना विदिशा, जो बाद में राजधानी भी बना। नान्दूर क्षेत्र भी उस समय बौद्ध धर्म से प्रभावित था। वस्तुतः प्रद्योत बुद्ध का समकालीन था। पुराणों के अनुसार उसने इस क्षेत्र पर तेईस वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद इस क्षेत्र पर उसके छोटे पुत्र पालक ने शासन किया, क्योंकि उसके बड़े पुत्र गोपाल ने अपने लघु भ्राता पालक के पक्ष में मालवा का राजसिंहासन त्याग दिया था।[31]

2. नान्दूर का प्राग्मौर्ययुगीन और मौर्ययुगीन इतिहास :

ई.पू. चौथी शताब्दी में अवन्ति पहिले शैशुनाग के साम्राज्य के अन्तर्गत था पर बाद में यह नंद के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। प्राप्त अभिलेखों और साहित्यक प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि पूर्वी मालवा के क्षेत्र का महत्व मौर्ययुग में अधिक बढ़ा।[32] चन्द्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश का नाशकर विशाल मौर्यसाम्राज्य की स्थापना की। चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद बिन्दुसार इस साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना। बिन्दुसार के राज्यकाल में युवराज अशोक के अवन्ति महाजनपद को जीतकर मौर्यसाम्राज्य में मिला लिया। फलतः अशोक अवन्ति क्षेत्र के ग्यारह वर्षों तक गोप्ता (राज्यपाल) बने रहे।[33] उन्होंने उज्जयिनी को ही इस क्षेत्र की राजधानी बनाया था।

इस प्रकार साँची और विदिशा क्षेत्र का अशोक ने मगध साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। नान्दूर उस समय इसी साम्राज्य का हिस्सा था। बाद में रूग्ण बिन्दुसार की आसन्न मृत्यु का समाचार पाकर अशोक उज्जयिनी से रवाना होकर पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) पहुँचा और उसने मगध साम्राज्य की शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली।[34] उसने कश्मीर और कलिंग विजय से इस साम्राज्य को और बढ़ा दिया। अशोक के काल में नान्दूर क्षेत्र का समुचित विकास हुआ। साहित्य और कला तथा स्थापत्य के विकास के लिए यह युग सर्वाधिक उपयोगी रहा।

3. नान्दूर का शुंगयुगीन इतिहास :

'हर्षचरित', 'मालविकाग्निमित्र' और पुराणों के अनुसार मौर्य सम्राट के सेनापति पुष्यमित्र ने अन्तिम मौर्य नरेश वृहद्रथ की हत्या कर मगध साम्राज्य का सिंहासन प्राप्त कर लिया था।[35] पुष्यमित्र ने ई.पू. 184 में एक नये राजवंश की स्थापना की जिसे 'शुंग वंश' के नाम से जाना जाता है। शुंगों के सामनान्तर ही दक्षिण में सातवाहनों तथा कलिंग में चेदि वंश का प्रभाव बढ़ रहा था। पुष्यमित्र ने अपने शासनकाल में युवराज अग्निमित्र को विदिशा क्षेत्र का शासक बनाया। उस समय नान्दूर इसी क्षेत्र का अंग था।

4. नान्दूर का सातवाहनयुगीन इतिहास :

पुराणों में सातवाहन शासकों को आन्ध्रवंशीय माना गया है। सातवाहन शासकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रें पर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के मध्य से 225 ईसवी तक राज्य किया। सातवाहन राज्य का वास्तविक संस्थापक सिंधुक था जिसने कण्ववंश के राजा सुशर्मा को मारकर भारत पर अपना शासन स्थापित किया था।[36]

उसके बाद कृष्ण और शातकर्णि प्रथम शासक बने। पुराणों के अनुसार वह कृष्ण का पुत्र था। शातकर्णि प्रथम की उपलब्धियों का उल्लेख रानी नागनिका ने नानाघाट अभिलेख में मिलता है।[37] साँची के स्तूप की वेदिका पर उत्कीर्ण एक लेख[38] से शातकर्णि प्रथम की पूर्वी मालवा (आकार क्षेत्र) पर अधिकार का पता चलता है। उसने 106 ईसवी से 130 ईसवी तक इस क्षेत्र पर राज्य किया। नान्दूर क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। इसके पश्चात् सातवाहन वंश के प्रतापी शासक यज्ञश्री शातकर्णि ने 165 ईसवी से 193 ईसवी तक इस क्षेत्र पर शासन किया। मध्यप्रदेश में उसके सिक्के पूर्वी मालवा के प्रमुख केन्द्र बेसनगर (वर्तमान विदिशा) के 1913-14 में किए गए उत्खनन से तथा तेवर एवं देवास से भी प्राप्त हुए हैं। इसके बाद अमलयश इस क्षेत्र का शासक बना, जो इसी वंश का था। यहाँ के उत्खनन से प्राप्त धातु की अँगूठीनुमा मुद्रा, जिस पर 'अमलयश सातवाहन रज्ञो' खुदा है, से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।[39] इस प्रकार नान्दूर क्षेत्र इन शासकों के अधिकार में रहा। यह युग वैदिकधर्म के पुनरुस्थान का युग था। इस काल में व्यावसायिक श्रेणियाँ और व्यापारिक संगठन बने, जिससे वाणिज्य और व्यापार के क्षेत्र भी व्यापक विकास हुआ। कृषि, उद्योग, साहित्य, शिल्पकला, स्थापत्य कला, चित्रकला, मृण्मूर्तिकला की दृष्टि से भी ये काल समुन्नत का काल था।

5. नान्दूर का शक-क्षत्रपयुगीन इतिहास :

ई.पू. प्रथम शताब्दी में उत्तर-पश्चिम भारत में यूनानी राज्य का अन्त हो गया तथा उसके स्थान पर शक नामक एक विदेशी जाति ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उत्तर तथा पश्चिम भारत में शक-क्षत्रपों की कई शाखाएँ विद्यमान थीं। पश्चिमी भारत में दो शक वंशों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं- महाराष्ट्र का क्षहरात वंश और कादर्मक (चष्टन) वंश अथवा सुराष्ट्र और मालवा के शक-क्षत्रप। पहिले वंश का मध्यप्रदेश के किसी भाग से संबंध नहीं है। सुराष्ट्र और मालवा के दूसरे वंश कादर्मक (चष्टन) का अस्तित्व मिलता है। इस वंश की सत्ता स्थापित करने वाला पहिला शासक चष्टन था। बाद में यह महाक्षत्रप बना। वृद्धावस्था में उसने अपने पुत्र जयदामन् को इन राज्यों का क्षत्रप नियुक्त किया। संभवतः उसने सातवाहनों से उज्जयिनी को जीत लिया था। चष्टन के जीवनकाल में ही जयदामन् की मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् उसने अपने पौत्र (जयदामन् के पुत्र) रूद्रदामन् प्रथम को क्षत्रप नियुक्त किया। अन्धौ (कच्छ खाड़ी) अभिलेख[41] से ज्ञात होता है कि 130 ईसवीं में चष्टन अपने पौत्र रूद्रदामन् प्रथम से साथ मिलकर शासन करता था। चष्टन की मृत्यु के पश्चात् रूद्रदामन् प्रथम पश्चिमी भारत के शकों का राजा बना। जूनागढ़ (गिरनार) शिलालेख से स्पष्ट होता है कि सभी जातियों के लोगों ने रूद्रदामन् को अपना रक्षक चुना था और उसे 'महाक्षत्रप' की उपाधि से अलंकृत किया था।[42] रूद्रदामन् ने अपने शासनकाल में आकर (पूर्वी मालवा), अवन्ति (पश्चिमी मालवा) और अनूप (नर्मदा नदी के तट पर स्थित महिष्मती) आदि बारह क्षेत्रों को जीतकर अपने साम्राज्य में सम्मिलित किया था। रूद्रदामन् की मृत्यु के पश्चात् पश्चिमी और पूर्वी मालवा के शकों की शक्ति क्रमशः घटने लगी। मुद्रा संबंधी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि रूद्रदामन् के पश्चात क्रम से दामयसद्, जीवदामन्, रूद्रसिंह प्रथम आदि शक-क्षत्रप शासकों ने पूर्वी मालवा पर राज्य किया, किन्तु उत्तराधिकारी संघर्षों, पारस्परिक विग्रहों तथा आभीरों, मालवों और नागों के संघर्ष के परिणामस्वरूप दिन-प्रतिदिन कमजोर पड़ते गये। कुषाणों को संघर्ष शक-क्षत्रपों से हुआ था इसीलिए कुषाणों का प्रत्यक्ष अधिकार मध्यप्रदेश के नान्दूर क्षेत्र पर था। दूसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विदिशा और नान्दूर क्षेत्र पर नाग शासकों का अधिकार हो गया। नाग शासकों ने कुषाणों को हराकर इस क्षेत्र को अपने अधिकार में कर लिया था।[43]

6. नांदूर का नागवंशयुगीन इतिहास :

दूसरी शताब्दी ई. के उत्तरार्द्ध में जब मध्यभारत के दक्षिणी क्षेत्र में राजनीतिक उथल-पुथल चल रहा था उस समय नान्दूर, विदिशा और पद्मावती क्षेत्र में नागों के एक नये राजवंश का उदय हुआ। नागवंश के शासकों ने विदेशियों को भारत से बाहर खदेड़ने में महत्वपूर्ण योगदान किया है। सर्वेक्षणों और उत्खननों से प्राप्त नाग शासकों के सिक्कों के आधार पर विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि इस वंश का प्रादुर्भाव विदिशा में हुआ था। बाद में इन नागशासकों ने नान्दूर, पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा क्षेत्र पर अधिकार कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गंगाघाटी में कुषाण सत्ता के विनाश का श्रेय नागवंश को ही दिया जाता है। पुराणों के विवरण से पता चलता है कि पद्मावती (पद्मपवैया), मथुरा तथा कान्तिपुर में नागवंश के शासकों का शासन था। पुराणों के अनुसार मथुरा में सात तथा पद्मावती में नौ नागशासकों ने शासन किया। विद्वान् नागवंश का संस्थापक वृषनाग को मानते हैं, जिसने दूसरी शताब्दी में विदिशा में इस वंश की स्थापना की थी। विदिशा नागवंश का प्रमुख गढ़ था। सन् 1913-14 ई. के विदिशा उत्खनन में इस वंश से संबंधित अनेक सिक्के मिले हैं, जिनसे नागों के अधिकार की पुष्टि होती है। नागवंश के एक और शासक रविनाग का एक नये प्रकार का सिक्का भी एरण से प्राप्त हुआ है,[44] जिससे इस क्षेत्र में भी नागों की उपस्थिति का पता चलता है। नांदूर उत्खनन से प्राप्त महाक्षत्रप ईश्वरवर्मा, श्रीधर वर्मा, स्वामी विजयसेन, रूद्रसेन के चांदी के सिक्के नंदिनगर (नान्दूर) से निश्चित रूप से क्षत्रप आधिपत्य की स्थापना के प्रमाण हैं तथा नवीन क्षत्रप परीक्षित के सिक्के की प्राप्ति इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।[45] समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि बलवर्मा इस वंश का अन्तिम शासक था, जिन्होंने विदिशा-नान्दूर क्षेत्र पर शासन किया था।[46] इन नागवंशी शासकों ने कुषाणशासन और शंकों के शासन से देश को मुक्त किया, राष्ट्रीय चेतना को विकसित किया और आर्य संस्कृति का पुनरुद्धार करने का राष्ट्रव्यापी प्रयास किया। वैष्णव धर्म और अनुष्ठान को उन्होंने नये सिरे से प्रारंभ किया और साहित्य, स्थापत्य, मूर्तिकला, मृण्मूर्तिकला के विकास में अपना अमूल्य योगदान दिया। वाकाटक वंश का विदिशा और नान्दूर क्षेत्र से कोई संबंध नहीं रहा है, क्योंकि इस वंश के शासक बुन्देलखण्ड और उसके दक्षिणी-पश्चिम में राज्य कर रहे थे। नागवंश के अन्तिम शासक को हराकर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने पूर्वी मालवा को अपने अधिकार में कर लिया।

नान्दूर उत्खनन से महाराज पिशाच, सिमिलिपुतस, महादण्ड नायक पर्णक की मुद्राऐं भी मिली हैं जो नंदिनगर (नान्दूर) और उसके आसपास के क्षेत्र पर आधिपत्य करने की सूचना देती हैं। महाराज पिशाच का नाम भीमबैठका के शैलगृहों के शैलचित्रों में कई बार आया है। इससे स्पष्ट होता है कि इस राजा का राज्य भीमबैठका के आसपास के क्षेत्र तक तो था ही। संभव है और विस्तृत भी रहा हो। वररुचि ने पैशाची भाषा की विशद् चर्चा की है। गुणाढ्य ने अपने ग्रंथ 'वृहत्कथामंजरी' में भी इस भाषा का उल्लेख किया है। आचार्यदण्डी ने इसे 'भूत भाषा' कहा है। शेखर ने इसे पारियात्र ने निवासियों की भाषा माना है। इस प्रकार इस भाषा के उस राज्य में बोले जाने के कारण राजा का नाम 'पिशाच' पड़ा हो तो आश्चर्य नहीं? ये सब साक्ष्य वस्तुतः उसके इस क्षेत्र पर आधिपत्य होने को प्रमाणित करती हैं।

7. नान्दूर का गुप्तकालीन इतिहास :

प्रयाग स्तम्भलेख (प्रयागप्रशस्ति) के विवरणानुसार चन्द्रगुप्त के पुत्र समुद्रगुप्त ने पूर्वी मालवा के शासक बलवर्मा, जो नागवंश का अन्तिम शासक था, को युद्ध में पराजित कर यहाँ की सत्ता को अपने अधिकार में कर लिया है।[47] नान्दूर उत्खनन से इस युग से संबंधित एक धड़युक्त पत्थर की मूर्ति, पक्की ईंटों के अवशेष व ईंटों के फर्श मिले हैं, जो गुप्तकालीन इतिहास को पूरी तरह से प्रमाणित करते हैं।[48] चन्द्रगुप्त द्वितीय ने

लगभग 375 ईसवी से 415 ईसवी तक राज्य किया। प्राप्त अभिलेखों एवं मुद्राओं से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय, प्रथम गुप्त-सम्राट था, जिसने वैष्णवधर्म को राजधर्म घोषित किया था।[49] नान्दूर उत्खन्न से एक श्री विक्रमादित्य लेखयुक्त मुद्रा प्राप्त हुई है।[50] यदि यह मुद्रा चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य की ही मान ली जाय तो नंदिनगर पर श्री विक्रमादित्य का शासन स्थापित होना पहिली बार प्रमाणिता हो जाता है। भिलसद (बिलसद) अभिलेख[51] से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के बाद मगध साम्राज्य का सम्राट कुमारगुप्त प्रथम बना, जिसने 415 से 455 ईसवी तक राज्य किया। उसने अपने कार्यकाल में प्रत्येक प्रान्तों के लिए पृथक-पृथक् शासकों को नियुक्त किया। उसने घटोत्कचगुप्त को उस काल में पूर्वी मालवा का शासक बनाया। एरण, तुमैन, विदिशा और नान्दूर क्षेत्र पर उसी का शासन था। वह भी चन्द्रगुप्त द्वितीय के समान ही परम वैष्णव था।

कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् गुप्तशासन की बागडोर उसके सुयोग्य पुत्र स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के हाथों में आयी। जूनागढ़ और गढ़वा अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने लगभग 455 से 467 ईसवी तक राज्य किया। उनके भीतरी स्तम्भलेख से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने पुष्यमित्रों और हूणों को युद्ध में हराकर उनके भू-भाग को अपने अधिकार में कर लिया था। स्थिति के सामान्य होने पर उसने पूर्वी मालवा के शासक के रूप में मातृविष्णु को नियुक्त किया था। नान्दूर क्षेत्र पर भी उसी का शासन था। स्कन्दगुप्त संतानहीन था। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका सौतेला भाई पुरगुप्त मगध साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना, जिसने 467 से 472 ईसवी तक शासन किया। पुरगुप्त के शासन काल में उनका बड़ा पुत्र कुमारगुप्त द्वितीय काशी क्षेत्र का गोप्ता (राज्यपाल) था। उनका सारनाथ प्रतिमालेख इसका प्रमाण है। पुरगुप्त के बाद सीधे बुधगुप्त मगध-साम्राज्य का शासक बना। उसका शासनकाल 477 से 495 ईसवी तक था। नालन्दा से प्राप्त बुधगुप्त की मोहर से स्पष्ट हो गया है कि वह पुरगुप्त का ही द्वितीयपुत्र था। उसके एरण स्तम्भलेख से ज्ञात होता है कि उनके राज्यकाल में भी पूर्वी मालवा का सामन्त मातृविष्णु ही था।[52] इसके पूर्व के सभी गुप्त शासक वैष्णव धर्म के पोषक थे, किन्तु बुधगुप्त बौद्ध धर्म का अनुयायी और पोषक था।

बुधगुप्त की मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई नरसिंहगुप्त 'बालादित्य' मगध का शासक बना। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय गुप्त साम्राज्य तीन राज्यों में बंट गया था। मगध क्षेत्र का शासक नरसिंहगुप्त, मालवा क्षेत्र का शासक भानुगुप्त और बंगाल क्षेत्र का शासक वैन्यगुप्त था। भानुगुप्त के एरण प्रस्तर स्तम्भलेख[53] से ज्ञात होता है कि वह एक श्रेष्ठ वीर था। यह लेख 510 ईसवी का है। इस लेख में उसके मित्र गोपराज का भी उल्लेख है। हूणों से युद्ध करते हुए गोपराज और भानुगुप्त की मृत्यु हो गई और पूर्वी मालवा पर हूण नेता तोरमाण का अधिकार हो गया। भानुगुप्त के बाद उसका पुत्र कुमारगुप्त तृतीय हूणों की अधीनता स्वीकार करते हुए 543 ईसवी तक राज्य किया। नालन्दा से प्राप्त एक मुद्रालेख में विष्णुगुप्त का उल्लेख मिलता है, जो सम्भवतः कुमारगुप्त तृतीय का पुत्र था। इसने पूर्वी मालवा पर 550 ईसवी तक शासन किया। इसके बाद गुप्त साम्राज्य पूरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गया।

इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि गुप्त सम्राटों की सांस्कृतिक नीति उदार, सहिष्णु और भारतीय थी। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद देश में राजनीतिक विघटन की जो प्रक्रिया प्रारंभ हुई थी, वह गुप्त युग के अभ्युदय के पूर्व तक बनी रही। गुप्त सम्राटों ने इस राजनीतिक विघटन और विशृंखलता को समाप्त कर देश में एक सुव्यवस्थित और सुसंगठित शासन व्यवस्था और एकता को स्थापित किया, जिससे देश की शान्ति, सुख और समृद्धि में सर्वतोमुखी प्रगति हुई। राधाकुमुद मुखर्जी के शब्दों में, ''देश की भौतिक और नैतिक प्रगति का मुख्य कारण राजनैतिक दशा थी।''[54] राजनीतिक स्थिरता के कारण ही गुप्त-सम्राटों ने मध्य एशिया और दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में मैत्रीपूर्ण संपर्क स्थापित कर देश की सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ आधार प्रदान

किया। इन संबंधों से व्यापार-वाणिज्य, उद्योग-व्यवसाय के साथ-साथ पारस्परिक आचार-विचार का आदान-प्रदान भी हुआ, जिससे साहित्य और कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। संस्कृत भाषा ने इस काल की प्रगति में सहयोग दिया। यह काल राष्ट्रीय संस्कृति के विकास का उत्कर्षकाल था। धार्मिक सहिष्णुता, उदातता, समन्यत्मकता इस काल की संस्कृति की रीढ़ थी। साहित्य, कला-ललितकला, स्थापत्य-वास्तुकला, चित्रकला, मृद्भाण्डकला और मृण्मूर्तिकला आदि का इस युग में सम्यक् विकास हुआ। वैष्णव, बौद्ध और जैन धर्म दर्शन का विकास भी युग में समुचित और समान स्तर पर हुआ।

8. नान्दूर का गुप्तोत्तर एवं मध्यकालीन इतिहास :

पूर्वी मालवा क्षेत्र, जिसमें नान्दूर क्षेत्र भी सम्मिलित था, का राजनीतिक और सांस्कृतिक महत्व उत्तर गुप्त शासकों तथा हूण शासकों के कार्यकाल में कम हो गया था। छठीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूर्वी मालवा संभवतः उत्तरगुप्त शासक महासेनगुप्त तथा पश्चिमी मालवा कलचुरि शासक शंकरगण के हाथ में चला गया था।[55] फिर उत्तरगुप्तों और कलचुरियों के बीच राजनैतिक प्रतिद्धन्द्विता प्रारंभ हो गई। अभौना ताम्रपत्र[56] से ज्ञात होता है कि महासेन गुप्त के समय में ही उज्जयिनी सहित पश्चिमी मालवा पर शंकरगण कलचुरि का अधिकार हो गया था। महासेन गुप्त की मृत्यु के पश्चात् शेष पूर्वी मालवा के क्षेत्र को भी कलचुरियों ने उत्तरगुप्तों से छीन लिया।

आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में नान्दूर क्षेत्र ही नहीं, पूर्वी मालवा का सम्पूर्ण क्षेत्र स्थानीय शासकों के अधीन रहा। इस शताब्दी के मध्य में राष्ट्रकूटों, गुर्जर-प्रतिहारों एवं पाल शासकों की त्रिकोणात्मक संघर्ष, राजनीति और सैन्य प्रतिद्वन्द्विता प्रारंभ हो गयी जिसके परिणामस्वरूप एक दूसरे के बीच युद्ध जारी रहा। अन्ततः नवीं शताब्दी में पूर्वी मालवा पर परमार शासकों का अधिकार हो गया। विदिशा, नान्दूर, एरण, तुमैन और पद्मावती क्षेत्र इसके अंग थे। भोज इस वंश का प्रसिद्ध शासक था। परमारों की सत्ता-समाप्ति चालुक्यों और त्रिपुरी के कलचुरियों द्वारा हुई। कलचुरियों का इस क्षेत्र पर अधिकार बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक रहा। तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभिक समय में परमार राजा यशोवर्मन ने पुनः पश्चिमी और पूर्वी मालवा को अपने अधिकार में कर लिया। यशोवर्मन के उपरांत परमार शासन दो भागों में विभक्त हो गया। जयवर्मन के वंशज विदिशा में और उसके छोटे भाई अजयवर्मन के वंशज धार में शासन करने लगे। अजयवर्मन के बाद सुभरवर्मन और उसके पश्चात् अर्जुनवर्मन प्रथम धार के शासक बने। अर्जुनवर्मन प्रथम ने सन् 1210 से 1215 ईसवी तक शासन किया। उसका कोई पुत्र नहीं था, इस कारण विदिशा शाखा के शासक हरिश्चन्द्र का पुत्र देवपाल उसका उत्तराधिकारी बना। इसने 1239 ईसवी तक धार पर शासन किया। इसी समय पश्चिमी और पूर्वी मालवा पुनः एकीकृत हो गये। नान्दूर क्षेत्र भी एकीकृत मालवा का हिस्सा बना।

परमारकाल में इस क्षेत्र का कला और संस्कृति की दृष्टि से समुचित विकास हुआ। वैष्णव, बौद्ध और जैन धर्म विकसित होते रहे। स्थापत्यकला, मूर्तिकला, मृण्मूर्तिकला विकास की दृष्टि से यह काल गौरवशाली रहा।

सन् 1234 ईसवीं में दास वंश का सुलतान इल्तुतमिश ने भेलसा पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मालवा को खूब लूटा। देवपाल उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाया। इतना अवश्य हुआ कि इल्तुतमिश के लौटने के बाद परमार शासक देवपाल फिर विदिशा-नान्दूर क्षेत्र को जीतने में सफल हुआ। लेकिन रणथम्बौर के चौहान वाग्भट्ट ने अचानक आक्रमण कर देवपाल को मौत के घाट उतार दिया। देवपाल के पश्चात् जयतुंगदेव, जयवर्मन द्वितीय, जयसिंह तृतीय, अर्जुनवर्मन द्वितीय तथा भोज द्वितीय विदिशा नान्दूर क्षेत्र के शासक बने, लेकिन चौहानों के बार-बार आक्रमणों कर इस क्षेत्र को अपने अधिकार में

कर लिया। सन् 1284 ईसवी के आसपास विदिशा-नान्दूर क्षेत्र में खिलजी सुलतान जलालुद्दीन ने मालवा पर आक्रमण कर दिया। उसने विदिशा-नान्दूर क्षेत्र पर आक्रमण करने का कार्यभार उलाउद्दीन को सौंपा। उलाउद्दीन ने इस क्षेत्र पर आक्रमण करके महलदेव को मार डाला और पूरे क्षेत्र अपने अधिकार में कर दिया, इस तरह मालवा से परमार शासकों की सत्ता की इतिश्री हो गई।

जलालुद्दीन के बाद इस क्षेत्र पर मुहम्मद खिलजी, बहादुरशाह जफर, हुमायूँ, शेरशाह सूरी, अकबर, औरंगजेब का अधिकार रहा। बाद में इस क्षेत्र पर मराठों का आधिपत्य हो गया। सन् 1818 ईसवी में इस क्षेत्र पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।[57] वर्तमान समय में नान्दूर एक छोटे से गांव के रूप में आवासित है।

इस प्रकार पुरातात्त्विक नगर नान्दूर का राजनीतिक इतिहास उद्घाटित हुआ है। इससे स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि नान्दूर पूर्व मौर्य काल से लेकर पूर्वमध्यकाल तक एक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक महत्व के नगर के रूप में विद्यमान रहा।

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्त्व विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सन्दर्भ -

1. *नई दुनियाँ : रविवारीय विशेषांक, 15 मई, 1983 ई. पृ. 5*
2. *वही : पृ. 5*
3. *सुखसम्पति राय भण्डारी : हिस्ट्री ऑफ मालवा : भाग-1, पृ. 45*
4. *कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव एवं एम. श्रीवास्तव : प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 146*
5. *वही : पृ.146*
6. *वही : पृ.147*
7. *एफ. ई. पार्जिटर : द पुराण टेक्स्ट ऑफ द डायनेस्टीज ऑफ कलिएज, 1962 ई., नई दिल्ली, पृ. 20-21*
8. *नई दुनियाँ : रविवारीय विशेषांक, 15 मई, 1983 ई. पृ. 5*
9. *वही : पृ. 5*
10. *वही : पृ. 5*
11. *वही : पृ. 5*
12. *वही : पृ. 5*
13. *वही : पृ. 5*
14. *वही : पृ. 5*
15. *वही : पृ. 5*
16. *वही : पृ. 5*
17. *वही : पृ. 6*
18. *वही : पृ. 6*
19. *वही : पृ. 5*
20. *वही : पृ. 5*
21. *शेफाली भट्टाचार्य : मालवा क्षेत्र के जनपदीय सिक्कों का अध्ययन, विशेषकर विदिशा, एरण तथा अन्य केन्द्र के संदर्भ में, 1981 ई., अप्रकाशित शोध : सागर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र., पृ. 27*
22. *वही : पृ. 28*
23. *वही : पृ. 28*
24. *कैलाशचन्द्र जैन : मालवा थ्रू दि एजेज, पृ. 9*